पॉपुलर कल्चर का पावरहाउस बन गया है दक्षिण कोरिया

चंद्रभूषण

पूर्वी एशिया का छोटा सा मुल्क दक्षिण कोरिया अभी राजनीतिक कारणों से चर्चा में है। उसके राष्ट्रपति यून सुक योल की पत्नी पर भ्रष्टाचार का और खुद राष्ट्रपति पर उन्हें साफ़ बचा ले जाने का आरोप लगा तो इस राजनेता ने देश में बेखटके मार्शल लॉ लगा दिया। यह कहते हुए कि विपक्ष उत्तर कोरिया से मिलकर देश में अराजकता फैलाना चाहता है। सेना और पुलिस को आदेश जारी किए कि सांसदों को संसद में घुसने ही न दे और जो घुस गए हों उन्हें घसीटकर बाहर करे। गनीमत रही कि यह आदेश सख़्ती से लागू नहीं कराया जा सका। सांसदों ने किसी तरह इतनी संख्या जुटा ली कि कोरम पूरा हो गया और संसद ने मार्शल लॉ को ख़ारिज करते हुए राष्ट्रपति पर कुछ पाबंदियां आयद कर दीं। उनपर महाभियोग लगाने का प्रयास अभी सफल नहीं हुआ है लेकिन आगे ऐसा हो भी सकता है।

पिछले तीन दशकों से दुनिया में दक्षिण कोरिया की छवि एक स्थिर राजनीतिक व्यवस्था जैसी बनी हुई है। बतौर लोकतंत्र उसकी स्थिति संतोषजनक है और मीडिया समेत देश की बाकी संस्थाएं इस हद तक सक्रिय हैं कि पिछले छह राष्ट्रपतियों में चार को जेल की हवा खानी पड़ी है। सबसे बड़ी बात यह कि तानाशाहियों का लंबा दौर झेलने और आज भी भ्रष्टाचार और असमानता जैसी बीमारियों से बुरी तरह ग्रस्त होने के बावजूद यह हर मायने में एक खुला समाज है। इसका फ़ायदा उसे अपनी विश्वव्यापी सृजनात्मक छवि के रूप में मिल रहा है। लोकप्रिय युवा दायरे से लेकर गंभीर देखने-सुनने-पढ़ने वालों तक को दक्षिण कोरिया से लगातार कुछ न कुछ ऐसा हासिल हो रहा है, जिसके लिए उसे सराहा जाता है और देखते-देखते उभर आई उसकी विपुल रचनात्मकता पर आश्चर्य किया जाता है।

लड़के-लड़कियों से बातचीत में मैं के-पॉप (कोरियन पॉपुलर म्यूजिक) का ज़िक्र अक्सर सुनता हूं। जब-तब कुछ वीडियो भी देखे हैं जो दुबले-पतले, चपल परफॉर्मर्स की एनर्जी से अपनी तरफ़ ध्यान खींचते हैं। बीटीएस ग्रुप का गाना 'डायनेमाइट' और ऐसे ही बहुतेरे गाने अरबों की व्यूअरशिप ले चुके हैं। यह गाना अंग्रेजी में है और बाकी चर्चित के-पॉप गानों में भी अंग्रेजी और कोरियन अक्सर मिली-जुली होती है। अमेरिका, यूरोप और भारत के लोकप्रिय संगीत में शब्दों और बिंबों पर जिस सुनियोजित काम से वैराइटी पैदा होती है, के-पॉप में वह कम दिखता है। कई बार ऐसा लगता है जैसे म्यूजिक वीडियो नहीं, कोई विज्ञापन देख रहे हों। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि ग्लोबलाइज्ड दुनिया में अपने युवा टार्गेट ऑडिएंस से बाहर जाना दक्षिण कोरियाई बैंड्स के एजेंडे पर ही नहीं है।

वैसे, अरबों की व्यूअरशिप की शुरुआत 2012 में रैपर साई के चर्चित वीडियो 'गंगनम स्टाइल' से हुई थी, जो कंटेंट से ज्यादा अपनी मुद्राओं के लिए देखा गया। इसके शीर्षक का अर्थ समझने की कोशिश की तो पता चला कि यह सियोल में हान नदी के दक्षिणी तट (गंगनम) पर बसे नए अमीरों की लग्ज़ूरियस लाइफस्टाइल के बारे में है। इस गीत की लोकप्रियता का आलम यह रहा कि भारत के फिल्मी मंचों और क्रिकेट स्टेडियमों तक इसकी आजमाइश देखी गई। तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड कैमरन और संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान-की-मून ने कैमरे के सामने इसके स्टेप्स दोहराए और अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने इसका ज़िक्र 'कोरियन वेव' के नमूने की तरह किया।

आगे बढ़ने से पहले यह 'कोरियन वेव' का हल्ला खुद में कुछ अलग तवज्जो की मांग करता है। सबसे पहले चीनी पत्रकारों ने अपने यहां के-पॉप की शक्ल में एक कोरियाई लहर चल पड़ने की चर्चा शुरू की थी, फिर यह जुमला दक्षिण-पूर्व एशिया से होता हुई साई के वीडियो के बाद दुनिया भर में चलने लगा। लेकिन इसके पहले सन 2008 में ही दक्षिण कोरिया का कुल सांस्कृतिक निर्यात डॉलर टर्म्स में उसके कुल सांस्कृतिक आयात से ज्यादा हो चुका था। यानी

उपभोक्ताओं के स्तर पर एक बड़ी सॉफ्ट-पॉवर के रूप में दक्षिण कोरिया की पहचान पहले ही बन चुकी थी।

यही समय था, जब यह महसूस किया गया कि अंग्रेजी टीवी सीरियल्स के अलावा दो और भाषाओं के टीवी सीरियल्स का दर्शक वर्ग उनके राष्ट्रीय दायरे से बाहर भी है। ये भाषाएं थीं टर्किश और कोरियन। उर्दू भाषा (पाकिस्तान प्रोड्यूस्ड) इस सूची में बाद में जुड़ी, हालांकि उसके कॉमेडी वीडियो बहुत पहले से दुनिया भर में देखे जाते थे। हिंदी ने रामायण-महाभारत और कुछ लोकप्रिय सीरियलों के जरिये 1990 के थोड़ा इधर और उधर इस दायरे में जो शुरुआती बढ़त हासिल की थी, उसे वह निजी टीवी चैनलों के दौर में बचा नहीं पाई। खाड़ी मुल्कों में कुछ समय तक भारत के कुछ हॉरर शो चर्चा में रहे, फिर वह बाज़ार भी जाता रहा। लेकिन दक्षिण कोरियाई टीवी प्रोड्यूसरों ने अपने टीवी शोज लेकर एक बार क़दम बाहर निकाले तो अभी ओटीटी के दौर में भी उनका काम हर जगह छाया हुआ है।

कोरोना के दौर से लेकर अब तक कई सारे कोरियाई टीवी सीरियल्स विश्वव्यापी चर्चा में हैं, लेकिन सबसे ज्यादा बातें इनमें 'स्क्विड गेम' और 'इट्स नॉट ओके टु बी ओके' को लेकर सुनने में आती हैं। मेरे एक मित्र की टीनेजर बेटी ने युवा पीढ़ी में बहुत लोकप्रिय और कहीं ज्यादा रोमांटिक टीवी सीरियल्स की एक फेहरिस्त मेरे लिए बनाई थी, लेकिन उन्हें देखने का समय मैं नहीं निकाल पाया। ऊपर जिन दो सीरियल्स का नाम लिया है, उनका मिज़ाज ज्यादा थ्रिलर क़िस्म का है, हालांकि कोरियाई मिज़ाज के अनुरूप इनमें भी परिवार मौजूद है और समाज की बहुतेरी परतें दिखाई देती हैं। अमेरिका चले जाना और वहां करियर बनाना पाकिस्तानी और कोरियाई, दोनों ही प्रॉडक्शंस में कुछ इस तरह दिखता है, जैसे यह कोई पड़ोसी मुल्क हो और वहां जड़ें जमाने के लिए सिर्फ सूटकेस पैक करना काफ़ी हो।

'स्क्विड गेम' देखते हुए एक ऐसे समाज का नक्शा सामने उभरता है, जहां बहुतेरे लोगों के पास खोने को कुछ भी नहीं है। हालांकि मार्क्सीय मुहावरे के क़रीब लगने के बावजूद ये लोग सर्वहारा मज़दूर नहीं, मिडल क्लास लोग ही हैं। बस, किसी की नौकरी चली गई है, किसी की दुकान उजड़ गई है, किसी का सारा इंतज़ाम दुरुस्त है तो परिवार में किसी के पास उसके लिए फ़ुरसत ही नहीं है। एक डेस्परेट क़िस्म का समाज, जिसमें लोग एक बचकाने खेल में आख़िरी दांव लगाने के लिए शामिल होते हैं और जान गंवाते चले जाते हैं। कुछ लोगों को लगता है कि इस खेल में हार-जीत के फेरे में पड़े रहने के बजाय किसी तरह जड़ से खेल ही बंद करवा दिया जाए, लेकिन यह आसान नहीं है। 'इट्स नॉट ओके टु बी ओके' एक मनोरोगी चरित्र और एक सामान्य चरित्र की रोमांटिक प्रेमकथा है। इस तरह की कहानियां दुनिया में पहले भी लिखी-पढ़ी गई हैं, लेकिन मनोरोगी का 'प्रो-एक्टिव' होना इसे बहुत ख़ास बनाता है।

फिल्म 'पैरासाइट' का एक दृश्य

सन 2020 में 'पैरासाइट' को कई सारे ऑस्कर मिल जाने के बाद कोरियाई फिल्मों पर पॉपुलर दायरे में बातें होने लगी हैं, लेकिन गंभीर फिल्मों के मामले में इस देश के कलाकारों को काफ़ी पहले से बहुत ऊंचा दर्जा हासिल रहा है। सन 2000 में आई वोंग कार-वाई की फिल्म 'इन द मूड फॉर लव' एक उदास प्रेमकथा है और इसकी गिनती दुनिया की क्लासिक रूमानी फिल्मों में होती है। एक ऐसा पुरुष, जिसकी पत्नी किसी और से प्रेम करते हुए उसके साथ रहने चली गई है, और एक ऐसी स्त्री, जो उस दूसरे पुरुष की पत्नी है, दोनों संकोची जन एक-दूसरे के प्रति गहरी सहानुभूति से भरे हुए हैं। लेकिन स्थितियां उपयुक्त होने के बावजूद अपने लगाव को वे प्रेम की दिशा में नहीं ले जाना चाहते, क्योंकि अगर ख़ुद भी यही कर बैठे तो इन्हें धोखा देने वाले उस जोड़े में और इनमें फ़र्क़ क्या रहेगा!

ऐसी कोई संक्षिप्त बात 'पैरासाइट' के प्लॉट को लेकर नहीं की जा सकती। कारण यह कि इसे बनाने वाले बोंग जून-हो की ख्याति क्लासिक मिज़ाज की संघनित फिल्में नहीं, एक ढीली-ढाली कहानी उठाकर उसके ज़रिये समाज की नस-नस खोलने वाले दृश्यों का एक महाकाव्यात्मक कोलाज रचने वाले निर्देशक की रही है। उनकी दो और फिल्में मैंने देखी हैं, जिनसे उनके सामाजिक व्याकरण और ग्लोबल मिज़ाज का पता चलता है। 2006 में आई 'द होस्ट' और 2013 में आई 'स्नोपियर्सर'। दोनों का स्वरूप एक मायने में साइंस फिक्शन जैसा है, हालांकि इस विधा में बनाई गई हॉलिवुड फिल्मों से ये कहीं ज़्यादा गहरी हैं और समाज के दुख-सुख से इनका सीधा रिश्ता है।

'द होस्ट' में सियोल से गुजरने वाली हान नदी में एक अमेरिकी कमांडर बहुत सारा फार्मेल्डिहाइड डलवा देता है, जिससे वहां रहने वाला मछली जाति का कोई जीव एक दैत्याकार ख़तरनाक प्राणी में बदल जाता है। पूरी कहानी में हज़ारों लोग इस दैत्य के हाथों और इससे निपटने की सरकारी कार्रवाई के दौरान मारे जाते हैं लेकिन कहानी घूमती है शहर के बाहरी हिस्से में एक छोटी सी दुकान चलाने वाले औसत से हल्की बुद्धि वाले एक इंसान के परिवार के इर्दगिर्द, जो बिना अपनी किसी गलती के इस बवंडर में फंसकर राक्षस और सरकार, दोनों की मार खा रहा है।

'स्नोपियर्सर' एक इंटरनेशनल कास्ट वाली फिल्म है और इसकी मूल चिंता का एक छोर पर्यावरण से जुड़ा है। किस्सा यह कि एक वैश्विक योजना के तहत ग्लोबल वार्मिंग से निपटने के लिए वातावरण के ऊपरी छोर पर एक रसायन छिड़का जाता है, जिसका कुल नतीजा यह होता है कि पूरी दुनिया का तापमान अचानक नीचे सरक जाता है। पूरी धरती तीखे हिमयुग से गुज़रने लगती है। हालात इतने बिगड़ जाते हैं कि सारी वनस्पतियां नष्ट हो जाती हैं, सभी जानवर मारे जाते हैं और एक बड़ा पूंजीपति इंसानों की नस्ल बचाने के लिए पचीस-तीस हज़ार लोगों को एटमी इंजन वाली एक बहुत बड़ी रेलगाड़ी में भरकर धरती के आर-पार बिछी पटरियों पर हमेशा-हमेशा के लिए दौड़ा देता है।

ये सिर्फ़ इन दोनों फिल्मों की कहानी के ढांचे हैं। असल चीज़ इनमें आए दृश्यों में दिखने वाला सामाजिक वर्गों का टकराव, उसका छल-छद्म और उसकी निर्ममता है। 'पैरासाइट' में कहानी बिल्कुल चमत्कारिक नहीं है। एकदम ठोस ज़मीनी यथार्थ पर खड़ी इस फिल्म से यह पता चलता है कि जिस दुनिया में हम जी रहे हैं, वह बिना किसी चमत्कार के ही चमत्कारिक हुई जा रही है। सियोल में ही टिकी इस कहानी में हमारा सामना इस हक़ीक़त से होता है कि शहर की एक बड़ी आबादी तहखानों में रहती है और अगर कभी बारिश ज़्यादा हुई और लंबी खिंच गई तो लोगों का हाल ऐसे चूहों जैसा हो जाता है, जिनके बिल में पानी भर दिया गया हो। अपने यहां कोई बीस साल पहले हमने मुंबई का हाल भी ठीक ऐसा ही होते देखा है, लेकिन इसकी तकलीफ़ बयान करती कोई फिल्म नहीं देखी।

बहरहाल, पैरासाइट फिल्म में कहानी एक बेसमेंट से निकलकर एक अमीर परिवार के घर में बने एक ऐसे बेसमेंट में पहुंच जाती है, जिसके होने के बारे में इस परिवार को कुछ भी पता नहीं है। मज़ेदार सीक्वेंस बनते हैं और लगता है कि फिल्म कॉमेडी की राह पर बढ़ रही है। लेकिन अचानक कहानी में ट्विस्ट आता है और यह ख़ूनख़राबे वाली ऐसी भयानक ट्रैजेडी की शक्ल अख़्तियार कर लेती है कि इस माध्यम में भी 'एस्केप' के लिए कोई जगह नहीं रह जाती।

रही बात साहित्य की तो दक्षिण कोरिया में को-उन जैसे आधुनिक महाकवि के काम से दुनिया का पुराना परिचय रहा है, लेकिन कोरियाई किस्सागोई को अंतरराष्ट्रीय पहचान इस साल लेखिका हान कांग को दिए गए नोबेल पुरस्कार से ही प्राप्त हुई। अतिशय संवेदनशील भाषा के लिए चर्चित हान कांग अपने काव्यात्मक गद्य की पैदाइश के लिए जिस घटना को ज़िम्मेदार बताती हैं, वह किसी आंदोलन में सीधी भागीदारी की नहीं है। वैसे भी, 1979 में ग्वांग्जू शहर में हुए छात्र उभार के समय वे वहां थीं ज़रूर, लेकिन उनकी उम्र तब सिर्फ़ आठ साल थी। यह एक संयोग ही था कि दमन की कुछ तस्वीरें उनके हाथ लग गईं, जो इतनी भयानक थीं कि कोई जानवर भी इंसान के साथ वैसा सलूक न करे। इनमें एक तस्वीर एक कॉलेज-गोइंग लड़की के मरे हुए चेहरे में भुंकी पड़ी संगीन की थी!

हान कांग कहती हैं, ये तस्वीरें अगर वे सयानी उम्र में देखतीं तो शायद इस नतीजे पर पहुंचतीं कि पुलिस-फ़ौज इतनी ही क्रूर संस्थाएं हैं। लेकिन सशस्त्र बलों के हमले में मारे गए युवा आंदोलनकारियों के कटे-फटे चेहरे जितने बचपने में उन्हें दिख गए, उससे उनके दिमाग में यह धारणा बनी कि इंसान अपने से कमज़ोर लोगों के प्रति इस हद तक बेरहम हो सकता है! क़िस्से के रूप में यह हादसा उनके दो बाद के उपन्यासों 'ह्यूमन ऐक्ट्स' और 'वी डू नॉट पार्ट' में आता है, लेकिन उनका लेखकीय मन ये तस्वीरें हाथ लगने के साथ ही बनना शुरू हुआ।

इन आंदोलनों का सिर-पैर समझना हो तो एक नज़र हमें दक्षिण कोरिया की बुनावट पर डालनी होगी। बीसवीं सदी की शुरुआत में जापान ने कोरियाई प्रायद्वीप को अपना संरक्षित द्वीप घोषित किया और 1910 में उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसका यह क़ब्ज़ा द्विवतीय विश्वयुद्ध में उसकी पराजय तक जारी रहा, फिर कोरिया से जापानी फ़ौजों के हटने के साथ ही वहां गृहयुद्ध के बीज पड़ गए। एक युद्धरत पक्ष को रूसी, दूसरे को अमेरिकी खेमे का समर्थन प्राप्त हुआ और 1953 में दोनों खेमों के बीच हुई संधि के तहत उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया का गठन हुआ। इनमें उत्तर कोरिया का हाल दुनिया के सामने है। कम्युनिस्ट किसान नेता किम इल सुंग की तीसरी पीढ़ी वहां राज कर रही है। दक्षिण कोरिया में 1990 तक तीन अमेरिका संरक्षित तानाशाहों का शासन चला- सिंगमान री, पार्क चुंग ही और चुन डू ह्वान। इनमें तीसरे वाले के उभार के दौरान ग्वांग्जू शहर में हुई क़त्लोग़ारत ने लेखिका हान कांग का मानस रचा।

लगभग 35 वर्षों से दक्षिण कोरिया में लोकतंत्र है, लेकिन समाज में संसाधनों और जीवन स्तर की असमानता इतनी ज़्यादा है कि दुनिया में कहीं और उसकी कल्पना करना भी आसान नहीं है। एक छोटा सा तथ्य यहां रखा जा सकता है कि अकेले सैमसुंग कंपनी का सालाना उत्पादन दक्षिण कोरिया के कुल जीडीपी के 20 प्रतिशत के बराबर है। ऐसी बड़ी कंपनी

को कोरियाई जुबान में चाइबोल कहते हैं और इस स्तर के कुछ और चाइबोल, जैसे एलजी, डाएवू, डाइकिन, ह्युंडाई, क्युंगसुंग वग़ैरह भी वहां मौजूद हैं। ये कंपनियां कोरियाई लोकतंत्र को जेब में लेकर घूमने की हैसियत रखती हैं। इनकी चलाई घूसखोरी और भ्रष्टाचार का ही नतीजा है कि पिछले छह दक्षिण कोरियाई राष्ट्रपतियों में से चार को जेल काटनी पड़ी है और पांचवां भी धीरे-धीरे लेकिन निश्चित ढंग से उसी राह पर आगे बढ़ रहा है।

इस तरह की सामाजिक भूलभुलैया दक्षिण कोरिया में काफ़ी गहरे संस्कृतिकर्म का मसाला मुहैया करा रही है। लेकिन अच्छी कला के लिए अच्छी कथावस्तु ही काफ़ी नहीं होती। दक्षिण कोरिया एक अतिकुशल समाज है। कुछ समय पहले आए एक आंकड़े के अनुसार वहां की 97 प्रतिशत आबादी (बच्चे-बच्ची, बूढ़े-बूढ़ी समेत) सामान्य शिक्षित ही नहीं, किसी न किसी पहलू से तकनीकी प्रशिक्षण-प्राप्त है। इस हुनरमंद समाज को कलावंत बनाने के लिए अच्छा संस्कृतिबोध चाहिए, जो काफ़ी कुछ इस देश के बौद्ध इतिहास से आता है। इसके आगे बड़े पैमाने की कला बड़ी पूंजी की मांग करती है, जो मुनाफ़े की उम्मीद दिखने पर मिल ही जाती है। इसके बावजूद दुनिया पर दक्षिण कोरिया का कलात्मक फुटप्रिंट अभी जितना बड़ा है, इस देश का आकार देखते हुए वह स्तंभित करता है।

(लेखक चर्चित कवि और विचारक हैं)